एस० एन० बोस

बनाम

बिहार राज्य

26 मार्च, 1968

(न्यायमूर्ति जी० के० मित्तर और के० एस० हेगडे)

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947-धाराएँ 4, 5 और 6 – रिश्वत लेने के मामले में अन्वेषण के लिए अनुमति कब मिल गई मानी जाएगी-साबित करने के भार का स्वरूप क्या है-अभियोजन के लिए की जानेवाली मंजूरी का स्वरूप क्या है—

ii दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898-धारा 4(1) 'अन्वेषण' शब्द की व्याप्ति—

अपीलार्थी सहायक मेडिकल आफिसर था। उसने एक व्यक्ति 'ड' को योग्यता प्रमाणपत्र देने के लिए उससे 5 रु० रिश्वत के रूप में माँगे। 'ड' से इसकी सूचना मिलने पर विशेष पुलिस स्थापन के एक निरीक्षक 'द' ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 के अधीन एक आदेश (order) प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट (First Class Magistrate) से अभिप्राप्त किया। 'ड' ने उस निरीक्षक के कहने के अनुसार 5 रु० का करेन्सी नोट, जिसका नम्बर दर्ज कर लिया गया था, अपीलार्थी को दिया। वह नोट दिए जाने के पश्चात् अपीलार्थी से यह कहा गया कि वह "ड" द्वारा दिया गया नोट पेश करे। अपीलार्थी ने नोट तो पेश किया किन्तु उसने साथ में यह कहा कि "द" ने वह नोट उधार रकम की वापसी में दिया था। अन्वेषण के पश्चात् अपीलार्थी पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1) (घ) के साथ पठित धारा 5(2) और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 के अधीन आरोप लगाया गया और वह उन दोनों धाराओं के अधीन सिद्धदोष कर दिया गया। उच्च न्यायालय में उसने अपील की जो खारिज कर दी गई। इस न्यायालय में जो अपील की गई वह इन तीन आधारों पर की गई (1) इस मामले में अन्वेषण विधि के प्राधिकार के बिना किया गया (2) उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय दोनों ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 के अधीन सबूत भार की जो प्रकृति है उसे गलत समझा (3) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 के अधीन की गई मंजूरी विधि की दृष्टि से अविधिमान्य (Invalid) है क्योंकि जिस प्राधिकारी ने यह मंजूरी दी वह ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं था।

अभिनिर्धारितः—अपीलार्थी की इस दलील का कोई आधार नहीं है कि प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट से केवल ट्रैप लगाने के लिए अनुज्ञा माँगी गई थी और जब अन्वेषण के लिए

अनुज्ञा माँगी गई तब तक सारा अन्वेषण (Investigation) समाप्त हो चुका था। जो अनुज्ञा दी गई थी वह धारा 5 क के अधीन की गई अनुज्ञा थी किन्तु उक्त उपबन्ध के अधीन दी गई अनुज्ञा ही मामले का अन्वेषण करने की अनुज्ञा होती है। ट्रैप लगाना भी अन्वेषण का भाग है। इस परिवाद की सचाई का कि अपीलार्थी रिश्वत लेने का प्रयास कर रहा है, पता लगाने के लिए 'द' ने जितने भी कदम उठाए वे सब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 (1) के अधीन अन्वेषण शब्द के अन्तर्गत आते हैं। 'अन्वेषण' के अन्तर्गत वे सब कार्यवाहियाँ आती हैं जो उस संहिता के अधीन पुलिस आफिसर द्वारा या उससे भिन्न ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा, जो मजिस्टेट द्वारा इस निमित प्राधिकृत किया गया हो, साक्ष्य संग्रहार्थ संचालित हों। अतः ट्रैप लगाने के लिए और अपर अन्वेषण करने के लिए दो अलग अलग मंजूरियों की बात धारा 5क में अनुध्यात नहीं है। उक्त उपबन्ध के अधीन एक बार आदेश हो जाने पर वही आदेश पूरे अन्वेषण के लिए होता है। मध्य प्रदेश राज्य बनाम मुबारक अली (1959) एस० सी० आर० 201; एच० एन० ऋषिवद् और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य-(1955), एस० सी० आर० 1150; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम भगवन्त किशोर जोशी ए० आई० आर० 1964 सुप्रीम कोर्ट 221 निर्दिष्ट किए गए।

(ii) अपीलार्थी की यह दलील कि अनुज्ञा देने के पूर्व इस प्रश्न पर कि क्या उपाधीक्षक (डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट) की रैंक से निचले आफिसर को ऐसी अनुज्ञा देने की कोई आवश्यकता थी, गौर नहीं किया गया, इस मामले में इसलिए महत्व नहीं रखती कि अन्वेषण की वैधता पर विचारण न्यायालय में कोई आक्षेप नहीं किया गया। अपीलार्थी के विरुद्ध जो आरोप लगाया गया वह समाधानप्रद साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है। इसलिए अब केवल यह देखना है कि क्या इस बात से कि इस मामले में अन्वेषण उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे वाले आफिसर ने किया था, अभियुक्त के हितों पर इस न्यायालय द्वारा पहले निर्णयों में बताए प्रकार से कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। न तो इस प्रकार के प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की बात कही गई थी और न यह साबित की गई है। अन्वेषण के दौरान यदि कोई अवैधता हुई भी हो तो उससे विचारण करने की न्यायालय की सक्षमता और अधिकारिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जहाँ मामले में संज्ञान वास्तव में कर लिया गया है और उस मामले का विचारण समाप्त हो चुका है वहाँ पूर्ववर्ती अन्वेषण की अविधिमान्यता से तब तक उस मामले में हुआ निर्णय प्रदूषित नहीं होता जब तक कि उस कारण न्याय की विफलता न कारित हुई हो।

मुन्नालाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1964 सुप्रीम कोर्ट 28; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम भगवन्त किशोर जोशी–ए० आई० आर० 1964 सुप्रीम कोर्ट 221; ऋषिवद और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य (1955) 1 एस० सी० आर० 1150 निर्दिष्ट किए गए।

(iii) (क) अपीलार्थी की यह दलील कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 के अधीन की जानेवाली उपधारणा तब तक पैदा

नहीं होती जब तक अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर देता कि अभियुक्त ने [वैध पारिश्रमिक (Legal remuneration) से भिन्न] कोई परितोषण (Gratification) या कोई कीमती चीज किसी व्यक्ति से ली है और उसकी यह दलील कि Gratification (परितोषण) शब्द से केवल ऐसी ही चीज अभिप्रेत हो सकती है जो भ्रष्ट आचरण के लिए इनाम के रूप में दी गई हो। यदि यह सही हो तो प्रश्नगत उपधारणा बिल्कुल बेकार हो जाएगी। पर यह प्रश्न अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है क्योंकि यह न्यायालय अभिनिर्धारित कर चुका है कि धारा 4 के अधीन उपधारणा तब पैदा हो जाती है जब यह दर्शित कर दिया जाता है कि अभियुक्त ने अभिकथित रकम ली है और उक्त रकम वैध पारिश्रमिक नहीं थी। धारा 4 (1) में Gratification (परितोषण) को जो अर्थ दिया गया है वह शब्दकोश में उसे दिया गया तथा शाब्दिक अर्थ है और यह अर्थ है appetite (भूख) या desire (तृष्णा) की तुष्टि। उसका अर्थ 'रिश्वत के रूप में धन' तो हो ही नहीं सकता। प्रस्तुत संदर्भ में हमें इस बात के लिए कोई औचित्य दिखाई नहीं देता कि Gratification (परितोषण) शब्द का वह अर्थ न लिया जाए जो उसका शब्दकोश में है। इस धारणा को कि इसका यह अर्थ है, एक अन्य बात से समर्थन मिलता है। यह उपधारणा (Presumption) उस सूरत में भी की जाती है जब यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने कोई कीमती चीज ली है। विचाराधीन खण्ड उस अपराध के बारे में है जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 165 के अधीन दण्डनीय अपराध है। इस बारे में तो कोई संदेह है नहीं कि उक्त अपराध के आवश्यक तत्वों (essential ingredients) में से एक यह है कि अभियुक्त ने वह कीमती चीज या तो बिना प्रतिफल ली है या इतने प्रतिफल के लिए ली है जिसकी बाबत अभियुक्त जानता है कि वह अपर्याप्त है। यह तो कहा नहीं जा सकता कि भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम की धारा 4 (1) के सुसंगत खण्ड का अर्थ, जिसमें किसी कीमती चीज के प्रतिग्रहण सम्बन्धी उपबन्ध है, यह लगाया जाना चाहिए कि अभियोजन पक्ष को न केवल यह साबित करना होगा कि अभियुक्त ने कोई कीमती चीज ली है बल्कि यह भी साबित करना होगा कि उसने वह कीमती चीज या तो बिना प्रतिफल ली है या ऐसे प्रतिफल के लिए ली है जिसकी बाबत वह जानता था कि वह अपर्याप्त है। इस खण्ड का जो स्पष्ट अर्थ है उससे तो यह जरूरी हो जाता है कि जब कभी यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त ने कोई कीमती चीज ली है तभी, और किसी अन्य बात का सबूत दिए बिना, यह उपधारणा कर लेनी होगी। यदि यह बात ठीक है कि धारा 4 (1) के उस खण्ड का यही अर्थ है तो यह बात अयुक्तियुक्त (unreasonable) होगी कि यह अभिनिर्धारित किया जाए कि उसी खण्ड में प्रयुक्त Gratification (परितोषण) शब्द के अर्थान्तर्गत न केवल यह बात आती है कि यह साबित किया जाए कि कोई धन दिया गया था, वरन् यह बात भी है कि यह साबित किया जाए कि उक्त संदाय आपराधिक स्वरूप (Incriminating character) का था। शब्दकोश में Gratification (परितोषण) को जो अर्थ दिया हुआ है यदि उस अर्थ में Gratification (परितोषण)

शब्द के प्रयोग से उपधारा की उद्देश्य-सिद्धि हो जाती है और उसका भी वही परिणाम होता है जो इस खण्ड में प्रयुक्त 'कीमती चीज' शब्दों का है तो यह बात हमें ठीक नहीं जँचती कि हम Gratification (परितोषण) के विशेषण के रूप में उसके साथ और कोई वाक्य-खण्ड जोड़ें। (ख) जहाँ तक अभियुक्त पर सबूत-भार के स्वरूप का प्रश्न है वह ऐसे मामले में इतना हलका नहीं है जितना साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन अभियुक्त पर डाला गया भार होता है। अतः उसकी बाबत केवल इस तथ्य के आधार पर कि उसने जो सफाई पेश की है वह तर्क-सम्मत और अविसंभाव्य स्वरूप की है, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि उसने उस भार का निर्वहन कर दिया है। जरूरी यह है कि यह भी साबित किया जाए कि वह सफाई सच्ची सफाई है। उक्त उपबन्ध में आए "जब तक कि तत्प्रतिकूल सिद्ध न कर दिया गया हो" शब्दों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस उपधारणा का खण्डन यह सबूत देकर ही, न कि ऐसी कोरी सफाई से, जो देखने में ठीक लगती है, किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी ने अपनी बात के समर्थन में जो साक्ष्य दिया है उसे न तो विचारण न्यायालय ने और न उच्च न्यायालय ने ठीक माना है। इसलिए यह अभिनिर्धारित करना ही होगा कि सबूत का जो भार अपीलार्थी पर विधि ने रखा था उसे वह निबाह नहीं पाया है। धनवन्तराय बलवंतराय बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए० आई० आर० 1964 सुप्रीम कोर्ट 575; डी० बी० भंगन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य—(1966) 3 एस० सी० आर० 736 निर्दिष्ट किए गए। (iv) कोई भी न्यायालय भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 (17) में वर्णित अपराधों का संज्ञान (cognizance) उस प्राधिकारी की, जो अभियुक्त को पद से हटाने के लिए सक्षम है, पूर्व मंजूरी के बिना विधिमान्यतः (validly) नहीं कर सकता है। भारतीय रेल स्थापन संहिता में कोई उपबन्ध नहीं दिखाया गया जिसमें ऐसे प्राधिकारी, जो वर्ग III आफिसर को उसके पद से हटाने के लिए सक्षम हों, विहित किए गए हों। रेल रक्षक बल (Railway Protection Force) में नियोजित रेल सेवकों से भिन्न रेल सेवकों के अनुशासन तथा अपील सम्बन्धी नियमों में के नियम 1701 में यह कहा गया है कि सरकारी सेवकों के आचरण से सम्बद्ध किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबन्धों या भारतीय रेल अधिनियम 1890 की धारा 47 (ङ) के उपबन्धों के अधीन बनाए गए नियमों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना रेल सेवकों का आचरण परिशिष्ट 8 में अन्तर्विष्ट नियम से शासित होगा। यही नियम इस मामले को लागू होता है। अनुसूची से यह प्रकट है कि विभाग का प्रधान इस बात के लिए सक्षम नहीं है कि वह सेवा से हटाने का, अनिवार्य निवृत्ति का (Compulsory retirement) या सेवा से पदच्युत करने का दण्ड वर्ग III आफिसरों पर अधिरोपित करे। ये दण्ड उन पर वही व्यक्ति अधिरोपित कर सकता है जो नियुक्त करनेवाला प्राधिकारी या कोई अन्य उच्चतर प्राधिकारी हो। चीफ मेडिकल आफिसर को नियुक्त करनेवाले प्राधिकारी के रूप में नहीं दिखाया गया है। जो सामग्री हमारे समक्ष है उसको देखते हुए उस नतीजे पर पहुँचना संभव नहीं है कि चीफ मेडिकल आफिसर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 (1) के अधीन मंजूरी देने के लिए सक्षम था। अतः दी गई मंजूरी अविधिमान्य है। विधिमान्य

मंजूरी के बिना इस मामले का विचारण करने की कोई भी अधिकारिता (Jurisdiction) न्यायालय को प्राप्त नहीं थी इसलिए अपीलार्थी इस बात का हकदार है कि उसे दोषमुक्त किया जाए।

आर० आर० चारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य—(1963) 1 आर० सी० आर० 121 निर्दिष्ट किया गया।

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1967 की सं० 109 वाली दाण्डिक अपील

1965 की सं० 455 वाली दाण्डिक अपील में पटना उच्च न्यायालय के ता० 4 मई, 1967 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से : सर्वश्री देवव्रत मुखर्जी और पी० के० घोष
प्रत्यर्थी की ओर से : श्री बी० पी० झा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के० एस० हेगडे ने दिया।

न्यायमूर्ति हेगडे

विशेष इजाजत लेकर की गई इस अपील में, अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री देवव्रत मुखर्जी ने ये दलीलें पेश कीं :

(1) इस मामले में अन्वेषण विधि के प्राधिकार के बिना किया गया है (2) उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय दोनों ने, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 के अधीन सबूत भार की जो प्रकृति है उसे गलत समझा है (3) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 के अधीन दी गई मंजूरी विधि की दृष्टि से अविधिमान्य है क्योंकि जिस प्राधिकारी ने यह मंजूरी दी वह ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं था।

जिस मामले में यह अपील की गई है उसके तथ्य इस प्रकार हैं : अपीलार्थी सन् 1964 में गया स्थित रेलवे अस्पताल में सहायक मेडिकल आफिसर था। चौथा अभियोजन साक्षी डोमनराम गया स्थित पूर्वी रेल के 'इंसपेक्टर आफ वर्क्स' के अधीन काम करने वाला 'खलासी' था। पेचिश और पेट के दर्द से पीड़ित होने के कारण वह 2 मार्च, 1964 को इलाज के लिए 'सिक नोट' लेकर अपीलार्थी के पास गया। चौथे अभियोजन साक्षी का यह कहना है कि जब मैं इलाज के लिए अपीलार्थी के पास गया तब अपीलार्थी ने मेरा इलाज करने के लिए मुझसे 2 रु० अवैध परितोषण (Illegal gratification) के रूप में माँगे। चौथे अभियोजन साक्षी से अपीलार्थी को यह रकम मिली। तब अपीलार्थी ने उस मास की पाँचवीं, सातवीं, नवीं तथा बारहवीं तारीखों को उसका इलाज किया। ता० 12 तक वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुका था और अपने काम पर फिर से हाजिर होना चाहता था। इसके लिए उसने अपीलार्थी से प्रार्थना की कि मुझे योग्यता प्रमाणपत्र दे दीजिए। इस प्रमाणपत्र के लिए अपीलार्थी ने 5 रु० रिश्वत के रूप में माँगे और कहा कि यदि तुम 14 मार्च, 1964 तक यह रकम नहीं दोगे तो मैं तुम्हारा नाम 'सिक लिस्ट' से निकाल दूँगा। इस बातचीत के बाद जब चौथा अभियोजन साक्षी अस्पताल के बाहर जा रहा था तो उसे बाबू नाम का एक व्यक्ति मिला। उसने बाबू से अपीलार्थी के व्यवहार की

शिकायत की। बाबू ने उससे कहा कि तुम 14 मार्च, 1964 को मुझसे फिर मिलना। किन्तु 14 मार्च को विशेष पुलिस स्थापन का निरीक्षक श्री ए० सी० दास, जो सतरहवाँ अभियोजन साक्षी है, चौथे अभियोजन साक्षी डोमनराम से उसी के घर पर मिला। इसके बाद सतरहवें अभियोजन साक्षी के कहे अनुसार, चौथा अभियोजन-साक्षी, उससे रेलवे स्टेशन पर दुबारा मिला। यहाँ से वे दोनों जिले के 'डाक बँगले' गए जहाँ सतरहवें अभियोजन-साक्षी ने चौथे अभियोजन साक्षी का परिवाद (complaint) अभिलेखबद्ध (Recorded) किया। सतरहवें अभियोजन-साक्षी ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 क के अधीन एक आदेश (order) प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट से उसी दिन अभिप्राप्त किया। तत्पश्चात् चौथे अभियोजन साक्षी ने, पंच साक्षियों की उपस्थिति में पाँच रुपए का एक करेंसी नोट सतरहवें अभियोजन साक्षी के सामने पेश किया। सतरहवें अभियोजन साक्षी ने उस करेन्सी नोट का नम्बर नोट कर लिया। उसका एक ज्ञापन (Memorandum) तैयार किया, पंच साक्षियों से उस ज्ञापन को अनुप्रमाणित कराया और तब करेन्सी नोट चौथे अभियोजन-साक्षी को लौटा दिया जिससे रिश्वत की माँग दुबारा की जाने पर वही नोट अपीलार्थी को दिया जाए। प्रारम्भ में की जाने वाली इस कार्यवाही के पूरे हो जाने पर चौथा अभियोजन-साक्षी पंच साक्षियों के साथ अपीलार्थी के पास गया। जब चौथे अभियोजन-साक्षी ने प्रमाणपत्र माँगा तो अपीलार्थी ने फिर वही माँग दुहराई। तब चौथे अभियोजन-साक्षी ने वही करेंसी नोट उसे दे दिया। इस घटना को पंच साक्षियों ने देखा। तुरन्त ही सतरहवें अभियोजन-साक्षी को संकेत किया गया। सतरहवाँ अभियोजन साक्षी अस्पताल आया और उसने अपीलार्थी से कहा कि पाँच रुपए वाला वह नोट निकालो जो तुम्हें चौथे अभियोजन-साक्षी से मिला है। इस मौके पर अपीलार्थी बहुत ज्यादा घबरा गया। उसने यह तो स्वीकार कर लिया कि चौथे अभियोजन-साक्षी ने मुझे 5 रु० दिए हैं किन्तु उसका कहना यह था कि यह रकम तो उस उधार की वापसी थी जो उसने अपीलार्थी से ली थी। इतना कहकर उसने वही करेंसी नोट पेश कर दिया। अन्वेषण के पश्चात्, अपीलार्थी पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (1)(घ) के साथ पठित धारा 5 (2) और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 के अधीन आरोप लगाया गया।

अपीलार्थी का कहना यह है कि चौथे अभियोजन-साक्षी और उसकी पत्नी मेरे घर में छोटे मोटे काम किया करते थे। चौथा अभियोजन साक्षी पियक्कड़ था। इसलिए वह सदा ही जरूरतमंद रहता था। अपीलार्थी से वह अक्सर उधार लिया करता था। जिस तारीख को ट्रैप लगाया गया उसके कुछ ही दिन पहले उसने अपीलार्थी से पाँच रुपए उधार लिए थे और उस दिन वही रकम उसने लौटाई थी। अपने इस कथन के समर्थन में अपीलार्थी ने कुछ साक्षियों की गवाही कराई।

विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अभियोजन का साक्ष्य स्वीकार कर लिया और प्रतिरक्षा पक्ष का कथन नामंजूर कर दिया और अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 और साथ ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (2)

दोनों के अधीन सिद्धदोष ठहराया। तथ्य के जिन निष्कर्षों पर वे पहुँचे हैं उनके समर्थन में उन्होंने सुदृढ़ कारण दिए हैं। चूँकि यह न्यायालय तथ्य के प्रश्नों पर तब तक विचार नहीं करता जब तक परिस्थितियाँ असाधारण न हों, इसलिए श्री मुखर्जी ने प्रधानतः इस मामले से पैदा होनेवाले विधि विवाद्यकों (Legal issues) तक ही अपने कथन को सीमित रखा। उनकी पहली दलील यह है कि जो अन्वेषण (Investigation इस मामले में किया गया उसके लिए विधि का प्राधिकार (authority of law)—नहीं था। इसलिए अपीलार्थी इस बात का हकदार है कि उसे दोषमुक्त (acquit) किया जाए। उनका कहना यह भी है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (Prevention of curruption Act) की धारा 5 क को ध्यान में रखते हुए, सतरहवाँ अभियोजन-साक्षी, जो मात्र पुलिस निरीक्षक था, उस मामले का अन्वेषण (Investigation) प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुज्ञा (Previous permission) के बिना नहीं कर सकता था। 12 मार्च, 1964 को उसने प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट से मात्र ट्रैप लगाने की अनुज्ञा के लिए आवेदन किया था और वही अनुज्ञा अभिप्राप्त की थी। अन्वेषण करने की अनुज्ञा उसने तारीख 12 को अभिप्राप्त की किन्तु उस समय तक तो सारा अन्वेषण ही समाप्त हो चुका था। इसलिए विधिमान्य अन्वेषण (valid Investigation) हुआ ही नहीं। सतरहवें अभियोजन-साक्षी (prosecution witness) ने जो आवेदन तारीख 12 को किया वह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 क के अधीन था। यह सच है कि उक्त आवेदन में सतरहवें अभियोजन साक्षी ने केवल ट्रैप लगाने की ही अनुज्ञा माँगी थी। यह भी याद रखने की बात है कि जो अनुज्ञा दी गई वह धारा 5 क के अधीन दी गई अनुज्ञा थी। किन्तु उक्त उपबन्ध के अधीन दी गई अनुज्ञा ही मामले का अन्वेषण (Investigation) करने की अनुज्ञा होती है। ट्रैप लगाना भी अन्वेषण का ही भाग। है। मध्य प्रदेश राज्य बनाम मुबारक अली (1) मे इस न्यायालय ने यही अभिनिर्धारित किया है। सारा अन्वेषण एक है और वह अलग अलग भागों में बाँटा नहीं जा सकता है। चौथे अभियोजन-साक्षी के इस परिवाद (complaint) की सच्चाई का कि अपीलार्थी उससे रिश्वत लेने का प्रयास कर रहा है, पता लगाने के लिए सतरहवें अभियोजन-साक्षी ने जितने भी कदम उठाए वे सब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 (1) के अधीन 'अन्वेषण' शब्द के अंतर्गत आते हैं। "अन्वेषण" के अन्तर्गत वे सब कार्यवाहियाँ आती हैं जो इस संहिता के अधीन पुलिस आफिसर द्वारा या (मजिस्ट्रेट से भिन्न) किसी भी व्यक्ति द्वारा, जो मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत (authorised) किया गया हो, साक्ष्य-संग्रहार्थ संचालित हों। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 क में प्रयुक्त "अन्वेषण" शब्द की व्याप्ति की व्याख्या यह न्यायालय एच० एन० ऋषिबद् और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य (2) तथा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम भगवन्त किशोर जोशी (3) में कर चुका है। ट्रैप लगाने के

---

(1) (1959) एस० 2 एस० सी० आर० 201

(2) (1955) 1 एस० सी० आर० 1150

(3) ए० आई० आर० 1964 ए० सी० 221

1968(3) eILR(PAT) SC 1

लिए और, अपर अन्वेषण करने के लिए, दो अलग अलग मंजूरियों की बात धारा 5 क में अनुध्यात नहीं है। उक्त उपबन्ध के अधीन एक बार आदेश हो जाने पर वही आदेश पूरे अन्वेषण के लिए होता है। ऐसे आदेश से सम्पृक्त आफिसर न केवल ट्रैप लगाने के लिए बल्कि अपर (further) अन्वेषण करने के लिए भी समर्थ हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सतरहवाँ अभियोजन-साक्षी (Prosecution witness) इस भ्रान्ति में था कि उसे ट्रैप लगाने के लिए एक तथा मामले का अन्वेषण करने के लिए दूसरी, अर्थात् दो बार अनुज्ञा अभिप्राप्त करनी चाहिए। स्पष्टतः यही कारण है कि ट्रैप लगाने के कुछ दिन बाद उसने दूसरी अनुज्ञा के लिए आवेदन किया। किन्तु दूसरी अनुज्ञा तो बिल्कुल फालतू थी। उससे पूर्ववर्ती आदेश की विधिमान्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः इस दलील का कोई आधार नहीं है कि इस मामले में किए गए अन्वेषण का कोई भी प्रभाग ऐसा था जो विधि के प्राधिकार के बिना किया गया।

दूसरी दलील यह दी गई कि अनुज्ञा देने के पूर्व विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस प्रश्न के बारे में कि क्या ऐसी अनुज्ञा देने की कोई आवश्यकता थी, गौर नहीं किया। सतरहवें अभियोजन साक्षी को चाहिए था कि अनुज्ञा देने के पहले इस बात का अभिनिश्चय करे कि उस मामले का अन्वेषण करने के लिए उप-अधीक्षक (डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट) या उससे ऊपर वाली रैंक का कोई आफिसर तुरन्त उपलभ्य है या नहीं और इस बात का कि विधान मण्डल द्वारा प्रतिपादित इस प्रसामान्य नियम (normal rule) को त्यागने के लिए कि इस प्रकार के मामलों में अन्वेषण मामूली तौर पर पुलिस के उप-अधीक्षक या उससे ऊपरवाली रैंक के आफिसरों से कराया जाए, कोई दूसरा कारण है या नहीं। अपीलार्थी की ओर से यह दलील और दी गई कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने वह आदेश विचार किए बिना यों ही दे दिया। इस आदेश के समर्थन में उसने कोई कारण नहीं दिया। इसलिए जो अनुज्ञा दी गई उससे विधि की अपेक्षाओं (requirements of law) की पूर्ति नहीं होती है।

धारा 5 क अधिनियमित (enact) करने में विधान मण्डल का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161, धारा 165 या धारा 165 क के अधीन दण्डनीय अपराधों का और साथ ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 के अधीन दण्डनीय अपराधों का अन्वेषण मामूली तौर से उप-अधीक्षक या उससे ऊपरवाली रैंक के आफिसरों से ही कराया जाए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि धारा 5 क में आनुकल्पिक प्रक्रिया (alternative Procedure) के लिए भी उपबन्ध किया गया है। उप-अधीक्षक की रैंक से नीचेवाला कोई भी आफिसर इन अपराधों का अन्वेषण तभी कर सकता है जब उसने प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट की पूर्व-अनुज्ञा (Previous permission) अभिप्राप्त कर ली हो। विधान मण्डल ने यह उपबन्ध इसी आधार पर बनाया था कि जब तक ऐसा करने के लिए ठोस कारण न हो तब तक मजिस्ट्रेट उन अपराधों का अन्वेषण करने की अनुज्ञा उप-अधीक्षक की रैंक से नीचेवाले आफिसरों को देगा ही नहीं। किन्तु प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से यह आवश्यक हो सकता है कि इनमें से कुछ मामलों का अन्वेषण उप-अधीक्षक की रैंक से नीचेवाले आफिसरों द्वारा कराया जाए।

इसीलिए यह उपबन्ध किया गया कि ऐसी परिस्थितियों में प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट की अनुज्ञा अभिप्राप्त की जानी चाहिए। पूर्वोक्त मध्यप्रदेश राज्य बनाम मुबारक अली में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित (held) किया है कि धारा 5 क के अधीन कानूनी सेफगार्डों का पालन कड़ाई के साथ किया जाए क्योंकि इन सेफगार्डों का उपबन्ध लोकहित (public interest) को ध्यान में रखते हुए किया गया है। यह उपबन्ध तुच्छ और तंग करनेवाली कार्यवाहियों के विरुद्ध प्रत्याभूति (guarantee) के रूप में बनाया गया है। मजिस्ट्रेट अपना विवेकाधिकार (discretion) किसी पुलिस आफिसर को अभ्यर्पित (surrender) नहीं कर सकता है। जो भी सुसंगत सामग्री उसके सामने अनुज्ञा देते समय हो उसको ध्यान में रखकर उसे विवेकाधिकार का प्रयोग स्वयं करना चाहिए। इस सम्बन्ध में भी अपना समाधान कर लेना उसके लिए आवश्यक है कि प्रशासनिक सुविधा सम्बन्धी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किसी अधीनस्थ आफिसर (Subordinate officer) को अन्वेषण सौंपने का कारण मौजूद है या नहीं। उसी निर्णय में यह और तय किया गया कि अच्छा होगा यदि मामूली तौर से अनुज्ञा देनेवाले आदेश में ही अनुज्ञा देने के कारण साफ व्यक्त कर दिए जाएँ। धारा 5 क के अधीन अनुज्ञा जिस आदेश द्वारा इस मामले में दी गई है उस आदेश में कोई कारण नहीं बताया गया है। सतरहवें अभियोजन साक्षी के आवेदन पर विद्वान् मजिस्ट्रेट ने केवल यही आदेश दिया कि 'अनुज्ञा दी गई।' जब तक हम यह न मान लें कि सतरहवें अभियोजन-साक्षी के आवेदन में किया गया यह कथन ही कि "5 रु० की रिश्वत उससे (चौथे अभियोजन साक्षी डोमनराम से) लेकर योग्यता प्रमाणपत्र देने के लिए आज ही की तारीख नियत है" आवेदन के समर्थन में एक विवक्षित आधार है, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि सतरहवें अभियोजन साक्षी ने अपने आवेदन में कोई विशेष आधार इस बात का दिया कि मामले का अन्वेषण करने की अनुज्ञा उसे क्यों दी जाए। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस न्यायालय द्वारा धारा 5 क के महत्व की ओर अनेक विनिश्चयों में संकेत कर दिए जाने के बाद भी कुछ मजिस्ट्रेट तथा पुलिस आफिसर ऐसे हैं जिनके काम करने का ढंग कुछ चलताऊ ही है। स्पष्ट है कि इस न्यायालय के विनिश्चयों से वे अपरिचित हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जो अन्वेषण इस मामले में किया गया उसकी वैधता पर विचारण न्यायालय में कोई आक्षेप नहीं किया गया। अपीलार्थी के विरुद्ध जो आरोप लगाया गया वह समाधानप्रद साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है; इसलिए अब केवल देखना यह है कि क्या इस बात से कि, इस मामले में अन्वेषण उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे वाले आफिसर ने किया था अभियुक्त के हितों (Interests) पर इस न्यायालय द्वारा मुन्ना लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (4) तथा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम भगवंत किशोर जोशी (पूर्वोक्त) में बताए गए प्रकार से कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। न तो इस प्रकार के प्रतिकूल प्रभाव (Prejudice) पड़ने की बात कही गई और न यह बात साबित की गई है। अन्वेषण के दौरान यदि कोई अवैधता हुई भी हो तो उससे विचारण करने की न्यायालय की

---

(4) ए० आइ० आर० 1964 एस० सी० 28

सक्षमता और अधिकारिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जहाँ मामले संज्ञान (Cognizance) वास्तव में कर लिया गया है और उस मामले का विचारण समाप्त हो चुका है, वहाँ पूर्ववर्ती अन्वेषण की अविधिमान्यता से तब तक उस मामले में हुआ निर्णय प्रदूषित नहीं होता जब तक उस कारण न्याय की विफलता न कारित हुई हो (ऋषिवद् और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य (पूर्वोक्त) देखिए)।

अब हम भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 के प्रविषय सम्बन्धी प्रश्न को लेते हैं। जैसा पहले बताया जा चुका है, अपीलार्थी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि उसने 14 मार्च, 1964 को चौथे अभियोजन-साक्षी से 5 रु० की राशि ली थी। अपीलार्थी द्वारा इस तथ्य के एक बार स्वीकर कर लिए जाने पर जब तक वह इसके प्रतिकूल नहीं साबित कर देता, न्यायालय को यह उपधारित करना होगा कि उसने वह राशि योग्यता–प्रमाणपत्र देने के लिए हेतु या इनाम के रूप में प्रतिगृहीत की थी।

श्री मुखर्जी की दलील यह है कि प्रश्नगत उपधारणा (Presumption) तब तक नहीं पैदा होती जब तक अभियोजन–पक्ष ने यह न साबित कर दिया हो कि वह रकम रिश्वत के रूप में दी गई थी। उनका कहना यह है कि धारा 4 के अधीन उपधारणा केवल उसी दशा में पैदा होती है जिसमें अभियोजन-पक्ष (Prosecution) यह साबित कर देता है कि अपीलार्थी ने 'वैध पारिश्रमिक (Legal remuneration) से भिन्न कोई परितोषण (gratification) या कोई कीमती चीज किसी व्यक्ति से' ली है। उन्होंने 'परितोषण' शब्द पर बहुत जोर दिया। उनके कहने के अनुसार 'परितोषण' शब्द से केवल ऐसी ही कोई चीज अभिप्रेत हो सकती है जो भ्रष्ट आचरण के लिए इनाम के रूप में दी गई हो। श्री मुखर्जी की यह दलील यदि सही हो तो प्रश्नगत उपधारणा बिल्कुल बेकार हो जाएगी। इस प्रश्न पर विशद विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह प्रश्न अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है। सी० आई० एमडेन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (5) में यह न्यायालय अभिनिर्धारित कर चुका है कि, 'धारा 4 के अधीन उपधारणा तब पैदा हो जाती जब यह दर्शित कर दिया जाता है कि अभियुक्त ने अभिकथित रकम ली है और उक्त रकम वैध पारिश्रमिक नहीं थी। धारा 4 (1) में Gratification (परितोषण) शब्द को जो अर्थ दिया गया है वह शब्दकोश में उसे दिया गया तथा शाब्दिक अर्थ है और वह अर्थ है भूख (appetitc) या तृष्णा (desire) की तुष्टि। उसका अर्थ 'रिश्वत के रूप में धन तो हो ही नहीं सकता। इस न्यायालय ने आगे यह और कहा था कि: "यदि 'Gratification' (परितोषण) शब्द का अर्थ यह लगाया जाना हो कि उससे वह धन अभिप्रेत है जो रिश्वत के तौर पर दिया जाता है तो फिर यह विहित करना कि इस सम्बन्ध में कोई उपधारणा की जाएगी बिल्कुल व्यर्थ और निष्प्रयोजन होगा।" इस बारे में तो शंका हो नहीं सकती कि शाब्दिक अन्वय की दृष्टि से तो यह कहा जा सकता है कि उस कानूनी उपधारणा से तो इस उद्देश्य की

(5) (1960) 2 एस० सी० आर० 592

1968(3) eILR(PAT) SC 1

पूर्ति होती है कि इसके होने से न्यायालय यह उपधारित कर सकता है कि, जैसा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 191 में अपेक्षित है, किसी हेतु या इनाम की दृष्टि से वह धन रिश्वत के रूप में दिया गया है। हमारा यह मत है कि यह विहित करने में कि ऐसी कानूनी उपधारणा की जाए, विधान मण्डल का यह आशय हो नहीं सकता था। प्रस्तुत संदर्भ में हमें इस बात के लिए औचित्य दिखाई नहीं देता कि gratification (परितोषण) शब्द का वह अर्थ न लिया जाए जो उसका शब्दकोश में है। इस धारणा को कि इसका यह अर्थ है, एक अन्य बात से भी समर्थन मिलता है। यह उपधारणा (Presumption) उस सूरत में भी की जानी है जब यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त (accused) व्यक्ति ने कोई कीमती चीज ली है। विचाराधीन खंड उस अपराध (offence) के बारे में है जो भारतीय दंड संहिता की धारा 165 के अधीन दण्डनीय है। इस बारे में तो कोई संदेह है नहीं कि उक्त अपराध के आवश्यक तत्वों (essential ingredients) में से एक यह है कि अभियुक्त ने वह कीमती चीज या तो बिना प्रतिफल ली है या इतने प्रतिफल के लिए ली है जिसकी बाबत अभियुक्त जानता है कि वह अपर्याप्त है। यह तो कहा नहीं जा सकता कि धारा 4 (1) के सुसंगत (Relevant) खण्ड का अर्थ (Interpretation) जिसमें किसी कीमती चीज के प्रतिग्रहण सम्बन्धी उपबन्ध है, यह लगाया जाना चाहिए कि अभियोजन-पक्ष (Prosecution) को न केवल यह साबित करना होगा कि अभियुक्त ने कोई कीमती चीज ली है बल्कि यह भी साबित करना होगा, कि उसने वह कीमती चीज या तो बिना प्रतिफल (Consideration) ली है या ऐसे प्रतिफल के लिए ली है जिसकी बाबत वह जानता था कि वह अपर्याप्त है। इस खण्ड का जो स्पष्ट अर्थ है उससे तो यह जरूरी हो जाता है कि जब कभी यह दिखा दिया जाता है कि अभियुक्त ने कोई कीमती चीज ली है तभी, और किसी अन्य बात का सबूत दिये गए बिना, यह उपधारणा (Presumption) कर लेनी होगी। यदि यह बात ठीक है कि धारा 4 (1) के उस खण्ड का यही सही अर्थ है तो यह बात अयुक्तियुक्त (unreasonable) होगी कि यह अभिनिर्धारित (held) किया जाए कि उसी खण्ड में प्रयुक्त 'Gratification' (परितोषण) शब्द के अर्थान्तर्गत न केवल यह बात आती है कि यह साबित किया जाए कि कोई धन दिया गया था वरन् यह बात भी है कि यह भी साबित किया जाए कि उक्त संदाय (Payment) आपराधिक स्वरूप (Incriminating character) की थी। यह बात तो ठीक है कि विधान मण्डल 'धन' या 'प्रतिफल' शब्द का प्रयोग कर सकता था जैसा कि इंगलैंड के कानून की सुसंगत (relevant) धारा में किया गया है, लेकिन शब्दकोश में Gratification (परितोषण) शब्द का जो अर्थ दिया हुआ है यदि उस अर्थ में 'Gratification' (परितोषण) शब्द के प्रयोग से उपधारा की उद्देश्य सिद्धि हो जाती है और उसका भी वह परिणाम होता है जो उस खंड में प्रयुक्त कीमती चीज शब्दों का है तो यह बात हमें ठीक नहीं जँचती कि हम 'Gratification' (परितोषण) के विश्लेषण के रूप में उसके साथ और कोई वाक्य-खण्ड जोड़ें। अपीलार्थी ने जो दलील पेश की है उसका तत्वतः तो यही अर्थ है कि

'Gratification' की परिभाषा करने के लिए उससे एक वाक्य-खंड उसके विशेषण के रूप में जोड़ दिया जाए। धनवन्तराय देसाई बनाम महाराष्ट्र राज्य (6) में और फिर वी० डी० झंगन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (7) में भी इस न्यायालय ने यही मत अपनाया था। दूसरी दलील यह दी गई है कि अपीलार्थी पर धारा 4 (1) के अधीन जो रखा गया सबूत भार (Burden of proof) है उसे निबाहने के लिए तो उसको इतना ही करना है कि वह तर्कसंगत सफाई पेश कर दे, क्योंकि धारा 4 (1) द्वारा उस पर डाला गया यह भार बहुत कुछ उसी प्रकार का ही तो है जो अभियुक्त (accused) पर साक्ष्य अधिनियम (Evidence Act) की धारा 114 के अधीन होता है। विधि के इस अंग के विषय में भी पूर्ण स्थिरता इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों से हो गई है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 में यह उपबन्ध किया गया है कि न्यायालय ऐसे किसी तथ्य (fact) का अस्तित्व उपधारित (Presume) कर सकेगा जिसका घटित होना उस विशिष्ट मामले के तथ्यों के सम्बन्ध में प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण तथा लोक (Public) और प्राइवेट (Private) कारबार के सामान्य अनुक्रम (Common course of Business) को ध्यान में रखते हुए वह संभाव्य समझता है। किन्तु इस उपबन्ध के अधीन तथ्य सम्बन्धी कोई उपधारणा करने के लिए तो न्यायालय बाध्य है नहीं। यह बात तो न्यायालय के विवेकाधिकार (discretion) में है कि वह उसमें वर्णित उपधारणा चाहे करे, चाहे न करे किन्तु प्रश्नगत उपधारणा तो तब तक बनी रहेगी जब तक अभियुक्त यह साबित नहीं कर देता कि सच बात तो कुछ और ही है। दूसरे शब्दों में, यह साबित करने का भार कि सच बात कुछ दूसरी है, पूरी तौर से अभियुक्त पर डाला गया है। किसी तथ्य की बाबत यह बात कि वह साबित कर दिया गया है, तब कही जाती है जब न्यायालय उन मामलों पर, जो उसके सामने दरपेश है, विचार करने के पश्चात् या तो यह विश्वास करे कि उस तथ्य का अस्तित्व है या उसके अस्तित्व को इतना अधिसम्भाव्य (Probable) समझे कि उस विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में किसी प्रज्ञावान मनुष्य को (Prudent man) इस अनुमान पर कार्य करना चाहिए कि उस तथ्य का अस्तित्व है। अभियुक्त ने जो सबूत दिए हों वे ऐसे होने चाहिए जिनसे ऊपर बताई गई शर्तें पूरी हो जाएँ। दिए गये सबूत से यदि वे शर्तें पूरी नहीं होतीं तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसने यह साबित कर दिया है कि सच बात कोई और ही है। धनवन्तराय बलवन्तराय बनाम महाराष्ट्र राज्य (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय ने इस बात पर विचार किया था कि धारा 4 (1) के अधीन जो सबूत देने की अपेक्षा, अभियुक्त से की गई है वह सबूत किस प्रकार का होना चाहिए। उस मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि सबूत का जो भार ऐसे मामले में अभियुक्त पर डाला गया है वह इतना हल्का नहीं है जितना साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन अभियुक्त पर डाला गया भार होता है। अतः उसकी बाबत केवल इस तथ्य के आधार पर कि उसने जो सफाई पेश की है वह तर्क सम्मत

(6) ए० आई० आर० 1964 सुप्रीम कोर्ट 575

(7) (1966) 3 एस० सी० आर० 736

और अधिसंभाव्य स्वरूप की है, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि उसने उस भार का निर्वहन कर दिया है। जरूरी यह है कि यह भी साबित किया जाए कि यह सफाई सच्ची सफाई है। उक्त उपबन्ध में आए, "जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न कर दिया गया हो" शब्दों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस उपधारणा का खण्डन यह सबूत देकर ही, न कि ऐसी कोरी सफाई से, जो देखने में ठीक लगती है, किया जा सकता है। वी० डी० झंगन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था। किन्तु साथ ही उक्त विनिश्चय में यह भी कहा गया था कि यदि अभियुक्त अपनी बात पर्याप्त अधिसंभाव्य सिद्ध कर देता है तो साबित करने का जो भार उसपर होता है उसकी बाबत यह मान लिया जाएगा कि अभियुक्त ने उसको पूरी तरह निबाह दिया है और उसके लिए यह आवश्यक न होगा कि वह अपनी बात इस प्रकार के सबूत से सिद्ध करे कि उस बाबत किसी प्रकार की कोई युक्तियुक्त (reasonable) शंका न रह जाए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उस पर जो सबूत भार होता है वह उस प्रकार का नहीं है जैसा कि अभियोजन पक्ष पर होता है। अभियोजन पक्ष के लिए तो यह आवश्यक होता है कि वह अपनी बात न केवल साबित करे, वरन् इतनी हद तक साबित कर दे कि किसी प्रकार का युक्तियुक्त संदेह बाकी न रहे। प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी ने अपनी बात के समर्थन में जो साक्ष्य (Evidence) दिया उसे न तो विचारण न्यायालय (Trial Court) ने और न उच्च न्यायालय ने ठीक माना। इसलिए यह अभिनिर्धारित करना ही होगा कि सबूत का जो भार अपीलार्थी पर विधि (Law) ने रखा था उसे वह निबाह नहीं पाया है।

अब हम उस अन्तिम दलील पर विचार करते हैं जो श्री मुखर्जी ने पेश की है। वह यह है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (Prevention of Corruption Act) की धारा 6 (1) के अधीन पहले अभियोजन साक्षी (Prosecution witness) अर्थात् चीफ मेडिकल आफिसर ने अभियोजन के लिए जो मंजूरी दी थी वह इसलिए अविधिमान्य (invalid) है कि वह ऐसा प्राधिकारी नहीं था जो अपीलार्थी के पद से उसे हटाने के लिए सक्षम हो। इसलिए यह अभियोजन प्रदूषित (vitiated) है। जहाँ तक धारा 6 (1) इस मामले के लिए सारवान् है, वह इस प्रकार है :—

※ "No court shall take cognizance of an offence punishable under section 161 or section 164 or section 165 of the Indian Penal Code, or under sub-section (2) or sub-section 3 A of

---

※ हिन्दी में यह इस प्रकार हो सकता है :—

"कोई न्यायालय, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 या धारा 164 या धारा 165 के अधीन या इस अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) या उपधारा (3 क) के अधीन दण्डनीय उस अपराध का संज्ञान, जिसकी बाबत यह अभिकथित है कि वह लोकसेवक द्वारा किया गया है,

section 5 of this Act, alleged to have been committed by a public servant, except with the previous sanction,

(a) . . .

(b) . . .

(c) in the case of any other person, of the authority competent to remove him from his office."

आर० आर० चारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (8) में तथा कितने ही अन्य विनिश्चयों में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि कोई भी न्यायालय भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 (1) में वर्णित अपराधों का संज्ञान (cognizance) उस प्राधिकारी की, जो अभियुक्त को पद से हटाने के लिए सक्षम है, पूर्व मंजूरी के बिना विधिमान्यतः (validly) नहीं कर सकता है। विधिमान्य मंजूरी (valid sanction) के बिना उस मामले का विचारण (trial) करने की कोई भी अधिकारिता (jurisdiction) न्यायालय को प्राप्त नहीं थी। इसलिए, यदि इस मामले में दी गई मंजूरी अविधिमान्य है तो अपीलार्थी इस बात का हकदार है कि उसे दोषमुक्त (acquit) किया जाए।

पहले अभियोजन साक्षी ने अपने साक्ष्य में यह कहा है कि अपीलार्थी वर्ग III आफिसर था और वह डिप्टी एजेण्ट परसोनेल द्वारा, जो मेरे अधीनस्थ है, नियुक्त या पदच्युत किया जा सकता था। उसने कहा है कि इसलिए मैं भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 (1) के अधीन पूर्व मंजूरी देने के लिए सक्षम हूँ। पहले अभियोजन साक्षी के इस कथन को कि अपीलार्थी अपने पद से या तो डिप्टी एजेण्ट परसोनेल द्वारा या स्वयं पहले अभियोजन-साक्षी द्वारा हटाया जा सकता था प्रतिपरीक्षा के दौरान चुनौती दी गई। विचारण न्यायालय (Trial Court) और उच्च न्यायालय (High Court) दोनों ही ने पहले अभियोजन साक्षी के मौखिक साक्ष्य पर ही अपना यह निष्कर्ष निकाला है कि जो मंजूरी दी गई थी वह विधिमान्य है। हमारा यह मत है कि इस बात का विनिश्चय करने के लिए कि उक्त मंजूरी विधिमान्य थी या नहीं, मौखिक साक्ष्य (oral evidence) का ही अवलम्बन करके गलती की गई है। इसलिए प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल से हमने कहा कि इस विषय के नियमों का हवाला देकर आप हमारा समाधान कराएँ कि अपीलार्थी को अपने पद से हटाने के लिए

(क) ... ...

(ख) ... ...

(ग) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में, उस प्राधिकारी की जो उसको उसके पद से हटाने के लिए सक्षम है,

पूर्व मंजूरी से करने के सिवाय नहीं करेगा।

(8) (1963) 1 एस० सी० आर० 121

पहला अभियोजन-साक्षी सक्षम था। इसी प्रयोजन के लिए हमने कई बार स्थगन भी मंजूर किए। कुछ नियमों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है किन्तु उन नियमों से यह बात सिद्ध नहीं होती है कि उक्त मंजूरी देने के लिए पहला अभियोजन साक्षी सक्षम था।

अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई कि अपीलार्थी राजपत्रित (gazetted) आफिसर है, इसलिए उसको केवल रेल बोर्ड ही हटा सकता था। यह दलील ठीक नहीं जँचती है। जैसा कि 'प्राधिकृत वेतन-क्रम' (आथोराइज्ड स्केल्स आफ पे) नाम से भारत सरकार के रेल मंत्रालय द्वारा निकाले गए प्रकाशन से प्रतीत होता है, अपीलार्थी वर्ग III आफिसर है। उसी प्रकाशन से यह भी प्रतीत होता है कि राजपत्रित (gazetted) आफिसर केवल वर्ग I तथा वर्ग II आफिसरों को ही कहा जाता है। अपीलार्थी ने अपनी इस दलील के समर्थन में कि वह राजपत्रित (Gagetted) आफिसर है, रेल बोर्ड के संख्या पी० सी०/60 पी० एस० –5 एम० एच० –3, और तारीख 2-3-62 वाले पत्र का सहारा लिया है। हमारे प्रयोजन के लिए इस पत्र का केवल पैरा 4 ही सुसंगत है। उक्त पैरे में कहा गया है कि असिस्टेंट सर्जन पाँच वर्ष की सेवा के पश्चात् आनरेरी राजपत्रित (Gazetted) रैंक धारित करेगा और पासों के तथा क्वार्टर के अलाटमेंट जैसे मामलों में वह उन्हीं विशेषाधिकारों (privileges) का हकदार होगा जो राजपत्रित (Gazetted) आफिसरों को प्राय: प्राप्त होते हैं। इस पत्र से केवल इतना ही पता चलता है कि जिन आफिसरों का जिक्र उसमें किया गया है वे कुछ ऐसे विशेषाधिकारों के हकदार हैं जो मामूली तौर पर राजपत्रित आफिसरों को मिला करते हैं। हमारी समझ में इस पत्र का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि अपीलार्थी की रैंक बढ़ाकर उसे राजपत्रित आफिसरों की रैंक का बना दिया गया है। इसलिए हम तो इसी आधार पर विचार करेंगे कि अपीलार्थी अराजपत्रित आफिसर था। परंतु यह प्रश्न तो फिर भी बना रहता है कि क्या पहला अभियोजन-साक्षी अपीलार्थी को सेवा से हटाने के लिए सक्षम था। भारतीय रेल स्थापन संहिता (इण्डियन रेलवे एस्टैबलिशमेंट कोड) के पुनः मुद्रित खण्ड 2 (जो चौथी बार तारीख 26-7-62 को पुनः मुद्रित हुआ है) परिशिष्ट 38 को ध्यान में रखते हुए हम यह मान सकते हैं कि पहला अभियोजन साक्षी उस विभाग का प्रधान था जिसमें अपीलार्थी था। दूसरा प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी के विभाग का प्रधान अपीलार्थी को सेवा से हटाने के लिए सक्षम था।

1959 में प्रकाशित भारतीय रेल स्थापन संहिता के नियम **134** के अनुसार, भारतीय रेल के अराजपत्रित पदों में प्रथम नियुक्ति करने के लिए सक्षम प्राधिकारी, महाप्रबन्धक है, मुख्य प्रशासनिक आफिसर है या ऐसे निम्नतर रैंकवाले प्राधिकारी हैं जिन्हें वह यह शक्ति (power) प्रत्यायोजित (delegate) करे। इस बात को दिखाने के लिए कोई भी साक्ष्य नहीं दिया गया है कि यह शक्ति (power) विभाग के अध्यक्षों को प्रत्यायोजित की गई है। भारतीय रेल स्थापन संहिता 1926 में कोई ऐसा उपबन्ध हमें नहीं दिखाया गया जिसमें ऐसे प्राधिकारी, जो वर्ग III आफिसर को उसके पद से हटाने

के लिए सक्षम हो, विहित किए गए हों। किन्तु उक्त संहिता के खण्ड 1 की भूमिका टिप्पणी में यह कहा गया है कि आगे चलकर, पुनरीक्षित अध्याय 17 और पुनरीक्षित परिशिष्ट 1 और परिशिष्ट 12, इसी संस्करण में जोड़े जाने के लिए, मुद्रित किए जाएँगे। तब तक 1951 वाले पुनर्मुद्रित संस्करण में अध्याय 17 और परिशिष्ट 4 और परिशिष्ट 18 में अन्तर्विष्ट, समय समय पर यथासंशोधित, नियम और उपबन्ध लागू होते रहेंगे।

रेल रक्षक बल (Railway Protection Force) में नियोजित रेल सेवकों से भिन्न रेल सेवकों के अनुशासन तथा अपील सम्बन्धी नए नियम 1961 में प्रकाशित किए गए हैं। नियम 1701 में यह कहा गया है कि सरकारी सेवकों के आचार से सम्बद्ध, किसी तत्समय प्रवृत्त विधि (Law for the time being in force) के उपबन्धों या भारतीय रेल अधिनियम (Railways Act) (1890 का 9) की धारा 47 (ङ) के अधीन बनाए गए नियमों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, रेल सेवकों का आचरण (Conduct) परिशिष्ट 8 में अन्तर्विष्ट नियम से शासित होगा। हमारा ध्यान भारतीय रेल अधिनियम, 1890 की धारा 47 (ङ) के अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों या किन्हीं अन्य कानूनी नियमों की ओर नहीं आकर्षित किया गया है। इसलिए हम यही मानकर चल रहे हैं कि पूर्ववर्णित नियम 1701 ही इस मामले को लागू होता है। नियम 1705 में यह कहा गया है कि रेल सेवकों को निलम्बित (Suspend) करने तथा उनपर शास्तियाँ (Penalties) अधिरोपित करने के लिए सक्षम प्राधिकारियों (Competent authorities) का उल्लेख इन नियमों के साथ संलग्न अनुसूची 1, अनुसूची 2 और अनुसूची 3 में दिया गया है। नियम 1707 में ऐसे अनेक दण्डों का वर्णन किया गया है जो रेल सेवक पर अधिरोपित किए (Imposed) जा सकते हैं। इन्हीं दण्डों में के अन्तर्गत सेवा से निकालना और सेवाओं से पदच्युत करना है। अनुसूची 1, रेल बोर्ड के कार्यालय, रिसर्च डिजाइन ऐण्ड स्टैंडर्ड आर्गेनाइजेशन, रेलवे स्टाफ कालेज बड़ौदा, ऐडवांस्ड पर्मानेंट वे ट्रेनिंग स्कूल पूना, रेल सेवा आयोग, रेलवे रेट्स ट्रिबुनल, रेलवे लियाजाँ आफिस (Liaison office) और उन सब रेल कार्यालयों में नियोजित रेल सेवकों के संबन्ध में है जिन्हें यहाँ पर उल्लिखित नहीं किया गया है। अनुसूची 1 जोनल रेलों में नियोजित रेल सेवकों के मामलों के संबंध में लागू नहीं है। उनके बारे में उपबन्ध अनुसूची 2 में किया गया है। इस अनुसूची से यह प्रकट है कि हालाँकि विभाग का प्रधान वर्ग III आफिसरों पर परिनिन्दा और साथ ही कुछ अन्य दण्ड, जिनके ब्योरे उसमें दिए गए हैं; अधिरोपित कर सकता है, फिर भी विभाग का प्रधान (Head of the Department) इस बात के लिए सक्षम नहीं है कि वह सेवा से हटाने का (Removal), अनिवार्य निवृत्ति (Compulsory retirement) का या सेवा से पदच्युत (Dismiss) करने का दण्ड उनपर अधिरोपित करे। जैसा कि अनुसूची में देखा जा सकता है, ये दण्ड, उनपर वही व्यक्ति अधिरोपित कर सकता है जो नियुक्त करनेवाला प्राधिकारी या कोई अन्य उच्चतर प्राधिकारी हो। पहले अभियोजन साक्षी को नियुक्ति करनेवाले प्राधिकारी के रूप में नहीं दिखाया गया है। जो सामग्री हमारे

सामने है उसको देखते हुए इस नतीजे पर पहुँचना संभव नहीं है कि पहला अभियोजन साक्षी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 (1) के अधीन मंजूरी देने के लिए सक्षम था।

तदनुसार हम यह अपील मंजूर करते हैं और अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त करते हैं। अपीलार्थी जमानत पर है और उसका जमानतनामा खारिज किया जाता है।

अपील मंजूर की गई।